छत्तीसगढ़ की प्रथम हिंदी मासिक पत्रिका

ऐतिहासिक

‘छत्तीसगढ़-मित्र’

का

पुनर्प्रकाशन

प्रकाशक

पं. माधवराव सप्रे साहित्य शोध केन्द्र, रायपुर (छ.ग.)

891.438

तथा

वैभव प्रकाशन, रायपुर (छ.ग.)

अंक : द्वितीय, फरवरी, 1900 ई.

पुनर्प्रकाशन : अप्रैल 2004

मूल्य : प्रति अंक - 10 रु.

पुनर्प्रकाशित 'छत्तीसगढ़-मित्र'

संपादक : **डॉ. अशोक सप्रे एवं डॉ. सुधीर शर्मा**

सहयोग : श्री शंकर प्रसाद श्रीवास्तव

प्रकाशक : पं. माधव राव सप्रे साहित्य शोध केंद्र, रायपुर और
वैभव प्रकाशन, रायपुर (छ.ग.)

सर्वाधिकार : पं. माधव राव सप्रे साहित्य, शोध केंद्र, रायपुर (छ.ग.)

मुद्रक : वैभव कंप्यूटर्स एवं पब्लिशर्स, रायपुर (छ.ग.)

प्रकाशन वर्ष : अप्रैल , 2004 ई.

पत्रिका प्राप्ति स्थान : 1. डॉ. अशोक सप्रे, 16 डूंगाजी कॉलोनी
रायपुर - 492001 (छ.ग.), दूरभाष : 5060769

2. वैभव प्रकाशन,
280, एल.आई.जी., सेक्टर-4, दीनदयाल उपाध्याय नगर,
डंगनिया, रायपुर -10, दूरभाष : 2262338

मूल्य : प्रति अंक - 10 रु.

डाक से मंगाने पर : 16 रु.

सदस्य बनिए तथा 'छत्तीसगढ़-मित्र' का हाथ थामिए।

891.438
सप्रे अ 14805 छ

ऐतिहासिक छत्तीसगढ़-मित्र का पुनर्प्रकाशन

पुनर्प्रकाशन की भूमिका

प्रबुद्धजनों को ज्ञात होगा कि पं. माधवराव सप्रेजी ने मात्र 29 वर्ष की आयु में छत्तीसगढ़ के पेंड्रारोड से 'छत्तीसगढ़-मित्र' नामक हिंदी मासिक पत्रिका का प्रकाशन जनवरी सन् 1900 में प्रारंभ किया था। यह छत्तीसगढ़ का प्रथम हिंदी मासिक था। इसे प्रकाशित कर सप्रेजी ने हिंदी-सेवा, हिंदी पत्रकारिता तथा देशसेवा का अविभाजित मध्यप्रदेश, जिसे उस समय 'सी.पी. एण्ड बरार' कहा जाता था, में जो संगठित अभियान प्रारम्भ किया था उसने इस सुप्त प्रदेश को झकझोर कर रख दिया था। इस पिछड़े छत्तीसगढ़ के सर्वांगीण विकास का जो सपना सप्रेजी ने सर्वप्रथम देखा था उसका विशद स्वरूप 'छत्तीसगढ़-मित्र' के प्रथम अंक में 9 पृष्ठों में हमें देखने को मिलता है। आज हम देखते हैं कि उनका सपना ठीक 100 वर्षों के बाद 'नए छत्तीसगढ़ राज्य' के गठन से प्रारंभिक रूप में साकार हो गया है। उनके सर्वांगीण विकास का सपना अब हमें पूर्ण करना है।

इसी परिप्रेक्ष्य में हमने महसूस किया कि सप्रेजी ने जिस 'छत्तीसगढ़-मित्र' का प्रकाशन कर इस प्रदेश में हिंदी साहित्य सेवा, हिंदी पत्रकारिता तथा स्वतंत्रता आंदोलन प्रारंभ कर जो इतिहास रचा था उसका सम्यक ज्ञान आज की तथा नयी पीढ़ी को कराना नितांत आवश्यक हो गया है ताकि वे हमारी समृद्ध विरासत को पहचान कर गौरवान्वित हो सकें। इस उद्देश्य को लेकर हम सप्रेजी द्वारा प्रकाशित 'छत्तीसगढ़-मित्र' के सभी 36 अंकों को ज्यों का त्यों पुनर्प्रकाशित कर उन्हें विलुप्त होने से बचाने जा रहे हैं ताकि नई पीढ़ी उनके द्वारा स्थापित मूल्यों के अनुरूप लोक-सेवा व्रत के आदर्श को अपना कर 'सर्वांगीण विकसित छत्तीसगढ़' के सपने को साकार करने में अपने अंतर्मन से जुट सके। 'छत्तीसगढ़-मित्र' को आपकी मित्रता की प्रतीक्षा रहेगी।
हमारे इस प्रयास पर प्रबुद्ध पाठकों की प्रतिक्रिया सादर आमंत्रित है।

<u>नोट -</u> पाठकों के सुझावों एवं सुधीजनों की आकांक्षा के अनुसार इसे सप्रे जी के उद्देश्यों के अनुरूप आगे भी प्रकाशित किया जाएगा।

संपर्क का पता :
संपादक, 'छत्तीसगढ़-मित्र'
द्वारा डॉ. अशोक सप्रे, 16, डूंगाजी कॉलोनी,
रायपुर 492001 (छ.ग.)

संपादक
डॉ. अशोक सप्रे
डॉ. सुधीर शर्मा

14805

'छत्तीसगढ़-मित्र', 'हिंदी ग्रंथमाला' और 'हिंदी केसरी' के संपादक,
'हिंदी चित्रमय-जगत्' और 'श्री शारदा' के प्रवर्त्तक, 'कर्मवीर' के जनक,
मराठी 'दासबोध', 'गीता-रहस्य', 'महाभारत-मीमांसा' आदि अनेक
ग्रंथरत्नों के हिंदी अनुवादक,
अपने युग में राष्ट्रभाषा हिंदी के एक प्रधान आधार-स्तंभ,
हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी के रचनाकार तथा समालोचक,
मध्यप्रदेश तथा छत्तीसगढ़ के विविध आंदोलनों के सूत्रधार और
अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन (देहरादून-अधिवेशन) के सभापति

स्वर्गीय पं. माधवराव जी सप्रे, बी.ए.

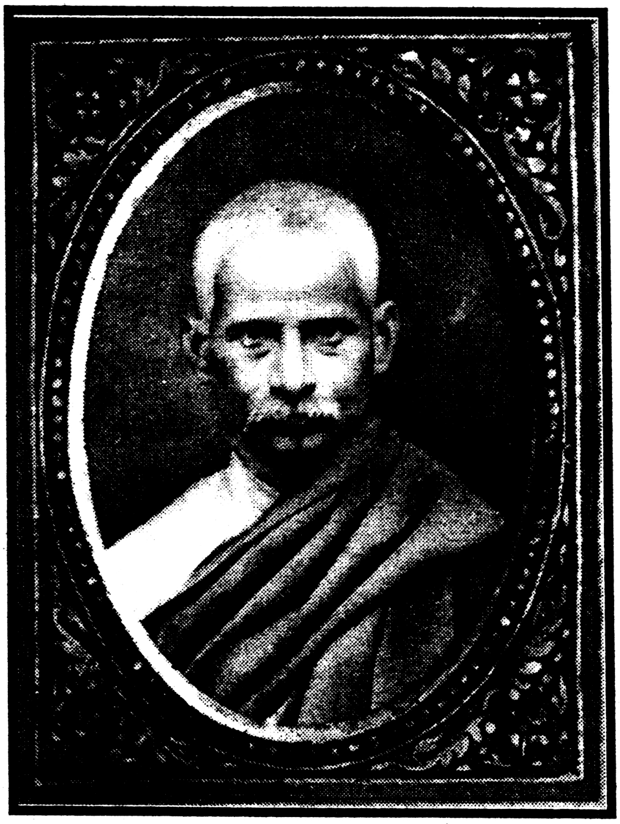

जन्मतिथि
ता. 19-6-1871 ई.
जन्म स्थान -
पथरिया ग्राम,
जिला - दमोह (सी.पी)

निधन
ता. 23 अप्रैल, 1926 ई.
द्वितीय चैत्र शुक्ल पक्ष, एकादशी
वि. सम्वत्, 1983, शुक्रवार
निवास-स्थान एवं निधन-स्थान
तात्यापारा, रायपुर

" ...... मेरे हृदय में राष्ट्रभाषा का भाव पैदा हुआ, मैंने इस बात का अनुभव किया कि इस विशाल देश में एक ऐसी भाषा की आवश्यकता है जिसे सब प्रांतों के लोग अपनी राष्ट्रभाषा मानें, और वह भाषा हिंदी को छोड़कर अन्य कोई नहीं है। मैं महाराष्ट्री हूँ, परन्तु हिन्दी के विषय में मुझे उतना ही अभिमान है, जितना किसी हिन्दीभाषी को हो सकता है। मैं चाहता हूँ कि इस राष्ट्रभाषा के सामने भारतवर्ष का प्रत्येक व्यक्ति इस बात को भूल जावे कि मैं महाराष्ट्री हूँ, मैं बंगाली हूँ, मैं गुजराती हूँ या मैं मद्रासी हूँ। ये मेरे 35 वर्ष के विचार हैं और तभी से मैंने इस बात का निश्चय कर लिया था कि मैं आजीवन हिन्दी भाषा की सेवा करता रहूँगा। मैं राष्ट्रभाषा को अपने जीवन में ही सर्वोच्च आसन पर देखने का अभिलाषी हूँ। मेरे हृदय का यह दृढ़ संकल्प है कि मेरे मरते समय समस्त भारतवर्ष में एक छोर से दूसरे छोर तक, राष्ट्रभाषा हिन्दी के सिवाय और किसी दूसरी भाषा की आवाज़ सुनाई न दे। "

.... पं. माधवराव सप्रे

(पंचदहा अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, देहरादून के सभापति-पद से दिये गये प्रारंभिक भाषण का एक अंश -- दिनांक 9 नवम्बर, 1924)

" पराधीनता की जंजीरों को तोड़ने के लिये अनेक साधन हैं। उनमें हिन्दी भाषा का प्रचार करना एक मुख्य साधन है। इसलिये भाइयो ! आओ, हम सब मिलकर इस बात का प्रण करें कि हम राष्ट्रभाषा का झण्डा भारत के कोने-कोने में फहरा देंगे। "

.... पं. माधवराव सप्रे

(अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, देहरादून के सभापति-पद से दिये गये समापन भाषण का उद्धरण -- दिनांक 11 नवम्बर, 1924)

छत्तीसगढ़-मित्र.

Chhattisgurh Mitra.

A
MONTHLY MAGAZINE
OF
Chaste and Simple Hindi Language.

शुद्ध सरल हिन्दी भाषा की मासिक पुस्तक

वर्ष १ ला. | फरवरी १९०० ई० | अङ्क २ रा.

EDITED BY
PANDIT RAMRAO CHINCHOLKAR
AND
MADHORAO SAPRE B. A.

सम्पादक
पं० रामराव चिंचोलकर तथा माधवराव सप्रे, बी. ए;

Proprietor
VAMAN BALIRAM LAKHEY ESQR. B. A,
Landlord and Banker;

Annual Subscription Rs. 1-8-0 } RAIPUR, C.P. { वार्षिक मूल्य १॥)

विषयानुक्रम

नं.	विषय	पृष्ठ
१	हांका अथवा व्याघ्रवध (कविता)	[illegible]
२	प्रार्थना.	८
३	भाषा में ग्रन्थ लेखन की आवश्यकता	१०
४	सुभाषित रत्न ३, ४, ५, ६, ७.	१[illegible]
५	विद्या.	१८
६	नारीधर्म.	२[illegible]
७	नारीधर्म (१).	२[illegible]
८	प्रेषित पत्र.	२८
९	पुस्तक प्राप्ति स्वीकार	२९
१०	मूल्य प्राप्ति स्वीकार	३[illegible]

छत्तीसगढ़-मित्र

की

नियमावलि.

(१) यह मासिक पुस्तक शुद्ध सरल हिन्दी भाषा में हर महीने आखिरी तारीख को, जिले रायपुर, मध्यप्रदेश, से प्रसि होती है.

(२) राज्यप्रकरण तथा वादग्रस्त धर्मविषयों को छोड़, साहित्य तथा शास्त्र के विषयों का इसमें समावेश कियाजायगा.

(३) छत्तीसगढ़ विभाग में विद्या की वृद्धि करने के लिये, विद्यार्थियों को द्रव्य की सहायता पहुँचाने के लिये और हिन्दीभाषा की उन्नति करने के लिये, यथामति यथाशक्ति तन मन धन से प्रयत्न करना—यही इस पुस्तक के प्रकाशकों का मूल उद्देश है.

(४) उपरोक्त उद्देश सिद्ध करने के हेतु छत्तीसगढ़ के विद्यार्थियों को स्कालरशिप दीजायगी और ग्रन्थकारों को द्रव्यद्वारा उत्तेजन दियाजायगा. इस विषय के खुलासेवार नियम अभी बन रहे हैं. ग्राहकों तथा आश्रयदाताओं का उत्साह देखकर प्रथम वर्ष के अनुभव के पश्चात् प्रकट कियेजावेंगे. सम्प्रति इस पुस्तक का अग्रिम (अगाऊ) वार्षिक मूल्य डाक महसूल सहित केवल १॥) डेढ़ रुपयाही नियत कियागया है.

(५) वार्षिक मूल्य पहिलेही लियाजायगा पीछे देनेसे दूनेदाम. अंक प्राप्त से तीन मास के भीतर मूल्य आजावे तो वह अग्रिम (अगाऊ) समझा जायगा. तीन मास व्यतीत होजाने पर पीछे के हिसाब से लियाजायगा.

(६) राजा महाराजा श्रीमान् जमींदारों से उनके सन्मानार्थ ५) रु॰ वार्षिक मूल्य.

(७) सभा, पुस्तकालय और विद्यार्थियों से अग्रिम वार्षिक मूल्य केवल १।) रुपया.

(८) छत्तीसगढ़ विभाग के सब हिन्दी पाठशालाओं के अध्यापक तथा छात्रवर्गों से केवल १) रु. वार्षिक मूल्य.

(९) नमूनेकी एक प्रति पहुँचने पर यदि "ग्राहक" होनाचाहें तो वार्षिक मूल्य भेजदेवें. यदि ग्राहक बनना स्वीकार नहो तो नमूने का अंक न लेवें—वैसाही लौटादेवें. अंक लेलेनेपर यदि ग्राहक बनना स्वीकार नहो तो पत्रद्वारा सूचना भेजें. जिन

महाशयों के पास से नमूने का अंक या सूचनार्थ पत्र नहीं आवेगा उन्हें हम अपने ग्राहकों की श्रेणी में समझेंगे. और यदि अंक प्राप्ति से तीन मास के भीतर मूल्य न भेजें तो ५वें नियम के अनुसार उन्हें दूना मूल्य देना पड़ेगा.

(१०) जो महाशय वार्षिक मूल्य के सिवाय औरभी कुछ द्रव्य की सहायता (१ रु, से लेकर ५० तक) देवेंगे वे "छत्तीसगढ़मित्र के" आश्रयदाता समझे जावेंगे. और जो महाशय ५०) रु से अधिक द्रव्य की सहायता देवेंगे वे प्रधान आश्रयदाता समझे जावेंगे.

(११) विज्ञापन, नोटिस और जाहिरातों की छपाई एक मास के लिये प्रति पंक्ति को ।) चार आने; तीन मास के लिये प्रति पंक्ति को ≡) तीन आने; और छःमास के लिये प्रति पंक्ति =) दो आने. इससे अधिक समय के लिये या पूरे पृष्ठ के लिये अलग रेट मुकर्रर है पत्रद्वारा ठहराना चाहिये.

(१२) जो महाशय इस पुस्तक में प्रसिद्ध करनेके लिये लेख लिख कर भेजें उन्हें चाहिये कि वे शुद्ध देवनागरी अक्षरों में कागज के एकही ओर लिखें और प्रत्येक महीनेकी १५ता० तक हमारे पास भेजदेवें.

(१३) स्त्रियों के प्रेषित लेख सहर्ष स्वीकार कियेजावेंगे—और वर्षके अन्त में उन लेखों के गुणावगुण की परीक्षा होकर योग्य पारितोषक दियाजायगा.

(१४) मनीआर्डर, रजिस्टरी, पत्र, लेख वगैरः सब नीचे लिखे पते पर भेजना चाहिये उत्तर के लिये आधआने का टिकट या जवाबी कार्ड भेजें. बैरंग खत नहीं लियेजावेंगे.

माधवराव सप्रे, बीए;
"छत्तीसगढ़मित्र" के व्यवस्थापक.
पोस्ट—पेंडरा; जिला बिलासपुर
(C. P.)

|| श्री परमात्मने नमः ||

वर्ष १ला.

छत्तीसगढ़-मित्र.

अङ्क २रा.

(श्लोक)

पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यानि गूहति गुणान् प्रकटी करोति ।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥

हाँका अथवा व्याघ्रबध.

(सवैया)

[illegible] वर्ण विवर्ण लसै मुख, खेद विशेष हृदय मँह भारी ।
दीर्घ तजै नित सांस जराहत, लागिय हो जिमि शोक कटारी ॥
हाथ धरी लकुठी तनु ओढ़त, कम्मल जीर्ण जहां तँह फारी ।
[illegible] भयो, घुसिके नृप आलय, बोलत बैन सुभीत अनारी ॥ १ ॥

[illegible] जरा से हत=बृद्ध;

“दीन पुकार सदैव सुनो प्रभु ! धेनु गुहार सुनो कस नाहीं !
राज तिहार, प्रजा तुम्हरी सब, दुःख हरो पण[1] तो अस चाही ॥
धेनु समान न आन लखे पशु, नम्र सुखाकर ये जग माहीं ॥
सो नित भच्छत दुष्ट विहिंसक, व्याघ्र खली लहटो वनगाही[2] ॥२॥
आज बचो प्रभु ! रैन घड़ी दुइ, आय परो ‘बघवा’ गउ माहीं।
भिर्र भये गउवा बछरा सब, थर्र कँपैं इत ते उत जाहीं ॥
चौंक उठे हमहूँ तब धीरज, धारि; दिये बल से ललकारी ।
हिंस्र भगो हनिके गउवा इक; काह सुने ? हमतो हलधारी !” ॥३॥
बैन सुनी अति दीन डरो भिद, रोम सबै तन पै सिधियाने ।
आयसु[3] दीन्ह तुरन्तहि भूपति, सेवक सिद्ध भये हरखाने ॥
“लेहु हमार कृपाण पुरातन, घाव करै अति घोर मयाने ।
नूतन रे हमरी प्रिय बन्दुक, कालहु जो लखिके डरमाने” ॥४॥
कोउ धरैं तलवार भयंकर, कोउ गहैं तनु भेदक भाला ।
कोउ शितास्त्र विचित्र धरैं, अरु लट्ठ गहैं कर खड्ग विशाला ॥
बाद्य धरैं बहु भांति–चढ़ैं नृप, मत्त गयन्द सुधीर विराजा ।
भीर घनी तनु तें तनु डांटत, भौंह चढ़ाय चलैं सह राजा ॥५॥
दारुण जङ्गल के ढिग आवत, फूट भये दुइ भाग, सियाने ।
ठाढ़ भये सरिता तट पै सब, भूप बली तहँ से अगुआने ॥
वाद्य बजैं नभहू प्रति नादत, लोक अनेक विधा ललकारैं ।
शब्द सुनाय न नाद भरो इक, मेघ गड़ाड़त ज्यों नभ फारैं ॥ ६ ॥

---

१ प्रतिज्ञा; २ रहनेवाला; ३ आज्ञा.

हाँकत दोउ नदी तट से जन, नाँघ गये इक मील अधीरा।
कुंजन सों निकसो पशुराज[1], सुनिर्भय डोलत जात सुधीरा॥
देह विशाल कराल लखै मुख, दीर्घ कराग्र लगे फुट तेरा।
धीरहु देखि अधीर बनैं; कर,-काँपत सिद्ध शिकारिहु केरा॥७॥
दूरहि से लख[2] साधिय दागत, गोलि लगी तनु वज्र समाना।
धन्य निगाह सुधी नृप की! पशु गात सबै जिनने पहिचाना॥
पीड़ित होतहि दुष्ट दियो ललकारि चलो वन गूंजत गूंगा।
भीम[3] उचाट भरी नृप के ढिग, आय गिरो तब भूतल सूँघा॥८॥

(छन्द)

तब रक्त नीर समान झरझर बहत तनु से व्याघ्र के।
अरु जीभ निकसी विकट मुखसे डरत हिय लखि लोक के॥
तब वाह! वाह!! सुघोष करहीं सर्व लोक विलोकि के।
कहि धन्य जननी! जाहि सुत अस हरत जीव सुदुष्ट के॥९॥
तोरि तोरि सुवृक्ष शाखा लोक निज निज कर गहैं।
जय घोष हर्षित तार[4] स्वर से करत निज गृह आत हैं॥
तब डोर[5] डारहिं बीच पथ के ग्राम स्त्रीजन; ताहि दै-।
विपुल धन, नृप; सबकनहू लहत द्रव्य अपार हैं॥१०॥

---

१ पशुओं का राजा=व्याघ्र; २ लक्ष्य-निशाना; ३ भयङ्कर; ४ ऊंचे; ५ छत्तीसगढ़ में ऐसी रीति है कि जब राजा या कोई श्रीमान शिकार खेलकर या शादी करके वापस आते हैं तो ग्राम की स्त्रियां राह में रस्सी से रोकती हैं इस हेतु से कि कुछ इनाम मिले.

(सवैया)

शांत नितांत भये उपरान्त नरान्तक को जब अन्त सुनावा।
आशिष देहिं धनी अधनी सब, धेनु सुखी अति हर्ष मनावा॥
पालत जो असहाय गरीबहिं हिंसन से गउ जीव बचावा।
देवहु ताहि प्रभो! चिर आयुष, आयुध सिद्धि सदा यह भावा॥

प्रार्थना.

हे परमात्मन्! तुम्हारी लीला अगाध है. तुम्हारा स्वरूप अवर्णनीय है. तुम्हारे गुण की महिमा अपरम्पार है. हम मतिमन्द हैं. केवल जड़बुद्धि हैं. कैसे हम तुमको जान सकें?

हे जगदीश! रात्रि के समय निद्रावस्था में तुमही हमारी रक्षा करते हो. प्रातःकाल होतेही अपने नित्यकर्म में प्रवृत्त होने के लिये तुम हो बुद्धि देते हो. दिनभर नानाप्रकार के उद्योग तथा परिश्रम करने में तुमहीं शक्ति देते हो. तुम्हारे सिवाय हमारा त्राता कौन है?

हे विश्वेश्वर! कभी २ मायारूपी अज्ञान में फँसकर हम अनुचित कर्म करने लगते हैं. कभी २ सत्यमार्ग को छोड़ असत्य पथ से चलने लगते हैं. कभी २ तो हम तुझे भी भूल जाते हैं! यह सब हमारी अविद्या का फल है.

हे भक्तवत्सल! हमें कुरीति से बचाओ. अनन्यभाव से शरण में लीन होना यही हमारा उचित कर्म है. सतत सप्रेम भक्तिसे ध्यान करना यही सत्यमार्ग है. आत्मसुख में निरन्तर रत होना यही मुख्य धर्मतत्त्व है. इसी पर हमारी रुचि बढ़ाओ.

हे ज्ञानमूर्त्ति ! तुमहीं पर हमारा सब भार है. तुमहीं पर हमारा पूर्ण विश्वास है; हमारी अपेक्षा तुमहीं को हमारी अधिक चिन्ता है; इस बात को हम जानते हैं. तुम तो दयाके सागर हो! तुम ऐसा न करो तो हमें किसका आधार है ?

हे अविनाशी ! तुम्हारी विभूतियां अनेक हैं. तुम्हारे वैभव का विस्तार निःसीम है. तिसपर भी, हे देवाधिदेव ! तू अव्यक्त है. तू अमुक एक प्रकार का है ऐसा कोई नहीं बतला सकता.

हे पुरुषोत्तम ! तू चराचर सब भूतों में भराहुवा है. तथापि तू अदृश्य है. मन भी तेरे पूर्ण स्वरूप का चिन्तन नहीं कर सकता. हे अनादि पुरुष ! तू त्रिकाल अव्यय है; तू सर्वव्यापी है; तू सर्वमूल है. ऐसा जानकर भी कभी २ हम तेरे अस्तित्व के विषय में साशङ्क होजाते हैं. यह महान् आश्चर्य !

हे पुराण पुरुष ! तू श्रेष्ठ है. तू पवित्र है. तू शाश्वत है. तू स्वयं प्रकाश है. ऐसा सब ऋषियों ने कहा है. परन्तु ऐसा कौन है जो तेरे विषय में आश्चर्यचकित न हुआ हो ? हमतो इसके सिवाय और कुछ भी नहीं जानते कि तू परम दयालु है. मनुष्यों को इससे अधिक जाननेकी आवश्यकता ही क्या है ?

हे कृपानिधि ! सब संसार तुम्हारी स्तुति गाता है परन्तु तुम्हारा महात्म कोई भी नहीं जानता. जो महाज्ञानी कहलाते हैं वे भी अपना क्षुद्रत्व प्रगट करते हैं.

हे जगन्नाथ ! हम अतीव दुर्बल और मूढ़ हैं. तुम्हारे चरण कमल सदैव हमारे हृदय में विराजते रहें; तुम्हारे ऐश्वर्य पर निरन्तर हमारा

विश्वास बना रहे इसीसे तुम्हारा ज्ञान प्राप्त होसकता है; इसीसे हमारी अविद्या दूर होसकती है.

हे परम पुण्यात्मा ! तुम्हारी आज्ञा पालन करना, तुम्हारे विषय अपनी कृतज्ञता प्रकट करना, और तुम्हारी इच्छानुसार सत्कर्म में मग्न रहना, यही हमारा कर्तव्य कर्म है. परन्तु यह सम्पादन करने के लिये तुम्हारीही प्रेरणा चाहिये. क्योंकि हम अज्ञ हैं. हमें कुछ सूझताही नहीं।

भाषा में ग्रन्थ लेखन की आवश्यकता.

समाज की उन्नति एकदम और एकही उपाय से नहीं होसकती; इसके लिये अनेक उपायों की योजना करनी पड़ती है. ऐसा कोई नहीं कह सकता कि अमुक प्रकार की शिक्षा वा कला के बढ़ानेही से सब देश का सुधराव होजायगा. यदि राज्यप्रकरण में आन्दोलन करने वाले यों कहें कि, कांग्रेस के सिवाय हमारा उद्धार करनेवाला दूसरा कोई नहींहै, तो यह उनकी भूल समझना चाहिये. समाज सुधारक यदि कहें कि, बालविवाह की प्रथा जबतक हिन्दुस्थान से उठा न दीजाय–स्त्रीवर्ग स्वतन्त्र होकर जबतक पुरुष के समानाधिकारी न होजाय–विधवा विवाह प्रचलित होकर जबतक जाति का बन्धन टूट न जाय तबतक हमारा देश प्रगति में आगे पैरही नहीं रख सकता–तो उनकी यह समझ भ्रान्ति-मूलक कहना चाहिये. धर्मोपदेशक अपने २ पन्थों का महत्व गाकर यदि कहने लगें कि, हे भाइयो ! जबतक तुम बाप्तिस्मा लेकर परम पवित्र स्वर्गीय पिता ईशू क्रिष्ट के अनुयायी नहीं होओगे; या सुन्नत करा के महम्मदी धर्मका अङ्गीकार नहीं करोगे; या सब प्रकार से सुशोभित, लावण्यवती युवतीजनों के झुण्ड मान से [illegible] मन्दिर में न

जाओगे; या आर्यसमाज की दीक्षा नहीं लेओगे; या ब्रह्मसमाजी न बनोगे; तबतक तुम्हारे देश को ऊर्जित कला कभी नहीं आवेगी—तो उनकी भी यह उक्ति हमें निरर्थक जान पड़ती है. इसी प्रकार से औद्योगिक परिषद के सभासद यदि यह प्रस्ताव करें कि, नूतन संशोधित यन्त्रों का प्रचार करके उद्योग की वृद्धि करने में पाश्चिमात्यों का जबतक अनुकरण न किया जायगा तबतक हमारे देश की उन्नति होही नहीं सकती; तो यह कथन भी एक देशीय समझा जावेगा सारांश, यदि कोई ऐसा कहे कि, अमुक एक विवक्षित मार्गका अवलम्ब करनेही से हमारी स्थिति सुधर जायगी, तो यह कहना कदापि सर्वसत्य नहीं होसक्ता. शरीर को हृष्ट और पुष्ट करने के लिये केवल एक अङ्ग विशेष पर व्यायाम करने से क्या लाभ होगा ? शरीर तो तभी निरोगी होसकता है जब कि हस्तपादादि सब अवयव यथोचित अपने २ काम में तत्पर रहें. अतएव बड़े २ दूरदर्शी विद्वानों का ऐसा मत है कि जबतक, शारीरिक, मानसिक, नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, औद्योगिक, राजकीय आदि शिक्षा का एक ही साथ पूर्ण प्रसार नहीं किया जायगा तबतक देश की सुदशा आनेकी कोई आशा न कीजावे. अर्थात्, शिक्षा के ये जो अनेक विभाग हैं उन्हीं की समीचीन वृद्धि करने से समाज की उन्नति होगी.

इसके कई प्रकार हैं. उन सब में ग्रन्थलेखन मुख्य आधारस्तम्भ समझा गया है. कारण यह है कि, विद्या की इमारत ग्रन्थरूपी नेव पर खड़ी है. देखिये, यदि आज तक एक भी ग्रन्थ न लिखा जाता तो पुरातन कालके विद्वानों के विचार हमें कैसे मालूम होते और फिर हम विद्या की वृद्धि कैसे कर सकते ? परन्तु बड़े हर्ष की बात है कि जब से सृष्टि निर्माण हुई है तबसे आज मिति का सम्पूर्ण अनुभव-भाण्डार पुस्तक

रूप से चाहे उसको हस्तगत होसकता है. प्रियपाठक! क्या आप नहीं जानते कि भूतकाल की प्रत्यक्ष ध्वनि और भविष्यकाल की अनहोनी बानी यदि सुनना चाहो तो ग्रन्थोंमें ही मिलेगी! व्यास और वाल्मीकि के समान ऋषि, कालिदास और भवभूति के समान नाटककार, विक्रमादित्य और श्रीहर्ष के समान भूपति; जगन्नाथराय के सरीखे पण्डित, तुलसीदास जी के तुल्य कवि और स्वामी जी ऐसे भगवद्भक्त आज कहां चले गए! हाय! ईश्वरी नियमानुसार वे अनन्त ब्रह्माण्ड भाण्डोदर में समा गए!! जिन तत्वों से उनका शरीर बना था उनमें वे मिलगये!!! अब उनका पता लगना कठिन है. आनन्द की वार्त्ता तो इतनीही है कि उनके प्रसिद्ध किये हुए ग्रन्थ उनकी चिरायुष्यता की साक्ष देरहे हैं. पञ्चतत्व निर्मित उनका देह नष्ट होजाने पर भी यश स्वरूपी उनकी स्मृति चिरकाल तक बनीरहेगी. और इसीलिये जब हम उनके ग्रन्थों का अवलोकन करते हैं तो हमें ऐसा जान पड़ता है कि मानों हम उनसे प्रत्यक्ष बातें करते हों. हम तो समझते हैं कि जबलों उनके ग्रन्थ प्रचलित रहेंगे तबलों वे अमरही कहलावेंगे. कदाचित् इसी कारण से विद्वानों ने पुस्तकों को सरस्वती का कमलकोष, ब्रह्मा का ज्ञानकमण्डलु, भूपतिका राज्यालङ्कार, विद्यार्थी का मित्र, पण्डित का हस्तामलक, और पुस्तकालय का शिरोरत्नकहा है. *

देश में जिस प्रकार के शिक्षण का प्रसार करना है उस प्रकार के विषयों पर प्रथम ग्रन्थ अवश्य लिखे जाना चाहिये. धर्मसम्बन्धी शिक्षा देना चाहें तो उस विषय पर उपयुक्त ग्रन्थों की आवश्यकता होगी. सामाजिक वा शास्त्रीय शिक्षण देना चाहें तो जब तक उन विषयों पर सुलभ भाषा में पुस्तकें न लिखी जांय तब तक कुछ भी नहीं होसकता.

---

* Suggested by a line in the Bangbasi.

इसी तरह क्या राजकीय और क्या औद्योगिक किसी प्रकार का शिक्षण क्यों न हो, उसका पूर्ण प्रचार करने के लिये पुस्तकों का लिखा जाना अत्यन्त आवश्यक है. अब वह समय नहीं रहा कि, एक विषय का अध्ययन करने के निमित्त गुरूजी के पास कई विद्यार्थी दूर२ के गांवसे आकर जमा होवें और गुरूजी अपने व्यास पीठपर आसन लगा एक फटी पुरानी पोथी सहारेमात्र के लिये हाथ में लेकर छात्रवर्गों को विद्या-दान देवें. दिन प्रति दिन शिक्षण का इतना फैलाव होता जाता है कि, प्रत्येक विषय पर उपयुक्त ग्रन्थ लेखन की आवश्यकता अधिकाधिक बढ़तीही जातीहै. जिन २ विषयों में नूतन शोध लगाए जाते हैं, और जितनी नई बातों का खोज लगाया जाताहै, वे सब पुस्तकद्वारा प्रकाशित होते हैं, ताकि सब लोग उसे जान लेवें. विद्यावृद्धि के उपरोक्त प्रकार का महत्व पाश्चिमात्य देशों में जितना जान पड़ता है उसका शतांश भी यहां दृष्टिगोचर नहीं होता. इँग्लेण्ड के किसी एक विद्वान ग्रन्थकार ने लिखा है कि आजकल, धर्म का शिक्षण, नीतिका ज्ञान, राज्य का प्रबन्ध और समाज का सुधराव होने के लिये ग्रन्थ लेखन मुख्य साधन है. "राज्य की व्यवस्था उसीसे होती है जिसमें वाक्शक्ति है. सम्प्रति किसी भी देश में धर्म के सत्यप्रचारक वेही हैं जो समाचार पत्र, पोथी,-पुस्तक और कविता के लिखने वाले हैं"*

---

* cf "The Nation is governed by all that has tongue in the nation..

The writers of Newspapers, Pamphlets, Poems, Books—these *are* the *real* working effective Church of a modern country"—Carlyle.

अधिक विस्तार का कुछ प्रयोजन नहीं. हम आशा करते हैं कि उक्त विवेचन से ग्रन्थों का महत्व भली भांति समझ में आजायगा.

अब इस बातके विचार करने में अधिक कठिनाई नहीं पड़ेगी कि भाषा में ग्रन्थ लेखन की अत्यन्त आवश्यकता है; क्योंकि यह तो सभी जानते हैं कि किसी विषयका अभ्यास करना स्वभाषा के द्वारा जितना सरल और सुगमहै उतना पराई भाषा से नहीं होसक्ता. पाठशाला के विद्यार्थी जिस बातको अंग्रेजी में दीर्घ प्रयत्न से भी नहीं समझ सकते उसीको स्वभाषा में शीघ्रही समझ जाते हैं. अतएव इस देश में भिन२ विषयों की शिक्षा दीजाय उन सब विषयों पर देशभाषा में ग्रन्थ भी अवश्य लिखेजाना चाहिये. प्रस्तुत विषय का जहांतक हमने अनुसन्धान किया है उससे यह बात प्रकट हुई कि इस देश में, बङ्गाली, मराठी और गुजराथी भाषाओं की जितनी उन्नति हुई है और दिन प्रति दिन होती जातीहै—उतनी अन्य किसी भाषा की नहीं हुई. जिसप्रकार के मनोरञ्जक तथा बोधदायक उपयुक्त ग्रन्थ उन भाषाओं में प्रसिद्ध होते हैं वैसे नागरी में, यद्यपि वह 'प्यारी सब गुण आगरी' है, क्यों नहीं होते ? मराठी भाषाओं में पृथक२ विषयों पर पुस्तकें और निबन्ध लिखवा कर प्रसिद्ध करने वाली कई सभाएं हैं; विद्वानों के लिखे हुए ग्रन्थोंकी परीक्षा करके योग्य पारितोषक देनेवाली दक्षिणाप्राइज़कमिटी और व्हरनेक्युलर ट्रान्सलेशन सोसायटी सरीखी वृहत् संस्थाएं हैं; और बड़े २ राजा महाराजाओं के आश्रय से पाश्चिमात्य ग्रन्थकारों के अनुपम ग्रन्थों का अनुवाद करने के लिए कई मन्डलियां भी हैं. यही कारण है कि नाटक कादम्बरी और उपाख्यान के समान मनोरञ्जक

विषयोंसे लेकर गणित ज्योतिष और विज्ञान सरीखे कठिन शास्त्रों पर भी महाराष्ट्र भाषा में कई पुस्तकें पाई जाती हैं. उसी तरह गुजराती भाषाका ग्रन्थ समूह बढाने के लिये कई श्रीमान विद्वान लोगों को साथ में ले पृथ्वी पर्य्यटन कर रहे हैं और विलायती भाषा के ग्रन्थों का रस गुर्जर-भाषाभिज्ञों को चखा रहे हैं. बङ्गभाषा के बारे जितना लिखेंगे उतना थोड़ाही होगा. उसमें कई विद्वान तो ऐसे होगये हैं जिन्होंने अपनी मातृभाषा के उद्धारार्थ सर्वस्व का त्याग कर दिया. बङ्गाली भाषा में जिस प्रकार का अवर्णनीय ग्रन्थ समूह है वैसा अन्यभाषा में दीख नहीं पड़ता. स्वदेशी सब भाषाओं के ग्रन्थों का नमूना तो उसमें हैही; परन्तु आश्चर्य यह है कि यूरोप के अनेकानेक भाषाग्रन्थ भी इसमें उपलब्ध हैं।

(Census) मर्दुमशुमारी के रिपोर्ट से मालूम होताहै कि हिन्दुस्थान में कमसे कम ११५ भाषाएं बोली जाती हैं. उनमें से केवल ९ मुख्य समझी गई हैं—जैसे हिन्दी, बङ्गाली, तैलंगी, मराठी, पञ्जाबी, तामिल, गुजराती, कानडी और उड़िया. जो कुछ ऊपर लिखा गया है उससे यह मालूम होचुका कि बंगाली, मराठी और गुजराती भाषाओं के ग्रन्थों की वर्तमान स्थिति कुछ समाधान कारक है. परन्तु हिन्दुस्थान के प्रायः सब भागों में जिसका अधिक प्रचारहै, अर्थात् भारत की बत्तीस कोटि प्रजा में से साढ़े आठ कोटि (ठीक चतुर्थांश से भी अधिक) प्रजा की नित्य व्यवहार की जो भाषा है, उस हिन्दी की कमी चिन्धी उड़ गई है। हाय! अत्यन्त शोकाकुल हो यह कहना पड़ताहै कि इसमें न तो ग्रन्थ समूह अधिक है और न ऐसी पुस्तकेंही हैं (एक दो को छोड़) जो केवल इसी विषय पर ध्यान देवें. कहां तक कहें—अच्छे २ समाचार-पत्रों तथ मासिक पुस्तकों की संख्यातक तो अधिक नहीं है. प्रिय पाठक-

गण, अपनी मनमोहनी परम सुहावनी मातृभाषाकी ऐसी शोचनीय अवस्था देख किस सत्याभिमानी पुत्र के हृदय में दुःखाग्नि प्रज्वलित न होगी ?

सुभाषित रत्न.

---

(३)

कुठारमालिकां दृष्ट्वा कम्पिताः सकला द्रुमाः ।
वृद्धस्तरुरुवाचेदं स्वजातिर्नैव दृश्यते ॥

किसी समय एक माली बहुतसी कुल्हाड़ियां रस्सी में बांध अपने बगीचे में गया. उसको देखतेही सब वृक्ष मारे डरके थरथर कांपनेलगे. तब उनमें से एक पुराने झाड़ ने कहा "भाइयो ! अभी से क्यों डरते हो ? जब तक हमलोगों में से कोई भी (बेंट, अर्थात् कुल्हाड़ी का डन्डा) इन कुल्हाड़ियों में शामिल न होगा तब तक उनसे हमारा नाश नहीं हो-सकता !" सच है. स्वजातीय अथवा आत्मीय जन के विश्वासघातसे ही नाश होताहै. अन्यथा नहीं.

(४)

गणिका गणकौ समान धर्मौ
निज पञ्चाङ्ग निदर्शका वुभौ ।
जन मानस मोह कारिणौ तौ
विधिना वित्तहरौ विनिर्मितौ ॥

वेश्या और (कुत्सित) ज्योतिषी का बर्ताव एकही सा जान

पड़ता है. ज्योतिषी अपना पञ्चाङ्ग[1]-पत्रा-दिखाता है, और वेश्या भी अपने पञ्चाङ्ग दिखाती है. इसी प्रकार ये दोनों, लोगोंके मन मोहने वाले हैं. कदाचित् ऐसाही समझ कर विधि ने इन दोनों को लोगों का द्रव्य अपहरण करने के लिये निर्माण किया है !

(५)

तीर्थानामवलोकनं परिचयः सर्वत्र वित्तार्जनम्
नानाश्चर्य निरीक्षणं चतुरता बुद्धेःप्रशस्ता गिरः ।
एतेसंति गुणाः प्रवासविषये दोषोस्तिचैको महान्
यन्मुग्धा मधुराधराधर सुधा पानं विना स्थीयते ॥

तीर्थों का अवलोकन, सर्वत्र परिचय, द्रव्यसम्पादन, अनेकानेक आश्चर्य पदार्थों का निरीक्षण, बुद्धिचातुर्य और सुन्दर भाषा–इतने सब गुण प्रवास में हैं. परन्तु उसमें एक बड़ा भारी दोष (भी) है–कि, मुग्धाङ्गना के मधुर अधर का अमृत प्राशन किये बिना रहना पड़ता है !

(६)

सब लोग कंजूस की निन्दा करते हैं. कहते हैं कि जमीन में तिजोरी गाड़ कर उस पर पलँग बिछा कर वह रात्रि के समय अकेला ही सोया करता है. भार्या का संग नहीं करता. कारण यह है कि न जाने कदाचित् लड़के बच्चे होजांय और फिर उसके वित्त का हरण करलें ! परन्तु एक कवि ऐसी उत्प्रेक्षा करता है कि, नहीं:—

कृपणेन समो दाता न भूतो न भविष्यति ।
अस्पृशन्नेव वित्तानि यः परेभ्यः प्रयच्छति ॥

---

1 तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण.

कृपण के समान दाता न तो आज तक कभी हुआ और न आगे होगा. दूसरे लोग तो दान देते समय द्रव्य का स्पर्श भी करते हैं परन्तु कृपण स्वकीय द्रव्य को बिना छूए ही दे देता है (अर्थात् मृत्यु के अनन्तर)!

(७)

अहं च त्वं च राजेन्द्र लोकनाथा वुभावपि ।
बहुव्रीहिरहं राजन् षष्ठी तत्पुरुषो भवान् ॥

एक दिन एक विद्वान महाशय राजा की सभा में गये. कहने लगे कि हे राजेन्द्र ! आप और हम दोनों भी लोकनाथ हैं. फरक इतनाही है कि आप श्रीमान हैं और मैं याचक हूं—अतएव याचक होनेके कारण मेरे नाम में 'लोकनाथ' बहुव्रीहि समास है—जैसे, लोक हैं नाथ जिसके, वह लोकनाथ. और आपके नाम में 'लोकनाथ' षष्ठीतत्पुरुष समास है—जैसे, लोकों का नाथ लोकनाथ. उक्त महाशय का बुद्धि चातुर्य देख राजा बहुत प्रसन्न हुए और उनकी योग्य संभावना की.

विद्या.

"सुख चाहो विद्या पढ़ो, बिन विद्या सुख नाहिं"

मनुष्य रात दिन इतनी मिहनत क्यों करता है ? अपने शरीर को कष्ट देकर अहोरात्र परिश्रम करने में क्यों भिड़ा रहता है ? ऐसा यदि किसीसे पूछा जाय तो वह क्या जबाब देगा ? निःसन्देह यही कहेगा कि, अपने दुःख को दूर करने और सुख को बढ़ाने के लिये यह सब उद्योग करना पड़ता है.

सच है. मनुष्य के जन्म की सार्थकता भी इसीमें है कि वह प्रत्येक उचित उपाय से अपने दुःख को दूर करे और सुख को बढ़ावे. दुनियां में प्रायः सब प्रकार के सुख धन के द्वारा प्राप्त होसक्ते हैं. अन्न वस्त्रादि नित्योपयोगी पदार्थों से लेकर ऐश और आराम की चीजों तक सबके लिये द्रव्यही की आवश्यकता है. जिसके पास धन नहीं है, उस का एक दिन भी निभना कठिन समझिये. इसी लिये किसी मार्मिक पुरुष ने धनको "वहिःप्राण" अर्थात् बाहर के प्राण कहा है. तो अब इसमें आश्चर्य ही क्या है कि, धनहीन मनुष्य जीवन्मृतके तुल्य दीख पड़े ! देखिये, जब वह सभा में आता है तो उसे बड़े लोगों के पास बैठने में लाज लगती है. उसका मन सदैव चिन्ता से मलीन रहता है और मुख तेज रहित होजाता है. सब लोग उसका उपहास करने लगते हैं. अन्त में तो वह स्वयं ही आप धिक्कार देने लगता है. घर में भी बिचारे को सुख नहीं मिलता. हरदम उसका चित्त "घृत लवण तैल तण्डुल वस्त्रेन्धन चिन्ता" से व्यग्र रहता है. स्त्री प्यार नहीं करती, पुत्र आज्ञा नहीं मानता, नातेदार आदर सत्कार नहीं करते, गांव वाले कुछ परवाह नहीं रखते. हाय ! ऐसे मनुष्य का जीवन निरर्थक है. धनहीन होने के कारण प्रत्यक्ष नारकयातना ही उसको यहां भुगतना पड़ती है. अतएव हर एक मनुष्य को चाहिये कि, इस संसार में सुख और सत्कार से रहने के लिये थोड़ा बहुत धन अवश्यही सम्पादन करे.

धन एकही प्रकार का नहीं होता. जमीन, धान्य, ढोर, हाथी, घोड़ा, सोना, चांदी, हीरा मोती इत्यादि स्थावर तथा जङ्गम पदार्थों को भी धन कहते हैं. अब यह बात सच है कि मनुष्य को इस धन से कई

लाभ और सुख होते हैं. परन्तु यह सुख चिरस्थायी नहीं होसक्ता. आज है तो कल नहीं; मेघाच्छादित सूर्य के प्रकाश के समान, कभी यहां तो कभी वहां; ऐसी दशा इस सुख की है. कारण इसका यह है कि, जिस प्रकार के धन से यह सुख मिलताहै वही तो स्वयं क्षणभंगुर है. बुद्धिवान मनुष्य को चाहिये कि, वह ऐसे धन का संग्रह करे जिसका कदापि नाश न हो. उसीसे चिरकालिक सुख मिलने की आशा कीजासक्ती है.

प्रिय पाठक, पाठिका गण! क्या तुम जानते हो कि वह कौनसा धन है जिसका कभी नाश नहीं होता और जो अनन्त सुख का मूल कारण है! देखो, संस्कृत कविकुल भूषण राजर्षिप्रवर श्री भर्तृहरि ने इस विषय में कहा है:—

विद्यानाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्न गुप्तं धनं
विद्या भोग करी यशः सुख करी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेश गमने विद्या परं दैवतं
विद्या राज सु पूजिता नतु धनं विद्या विहीनः पशुः॥

विद्याही पुरुष का उत्तम स्वरूप है. वह ऐसा गुप्त धन है कि उसके लिये न तो तिजोरी की आवश्यकता है और न चोरों का डर है विद्या, ऐश्वर्य भोग यश और सुख की देनेवाली, सकल श्रेष्ठ वस्तुओं में श्रेष्ठ है. परदेश में विद्या बन्धु के समान काम आती है. अतएव विद्या ही सबकी परम देवता है. राजा, विद्या की जितनी पूजा करताहै उतनी धन की नहीं करता. तस्मात् जो मनुष्य विद्याहीन है उसे पुच्छ विषाण हीन पशु समझना चाहिये.

इस प्रकार से विद्या का स्वरूप बहुत विशाल है. उसका एक

छोटा सा भाग शालाओं में सिखाया जाताहै. मुख्य भाग तो सृष्टि का अवलोकन और ध्यान करते २ स्वपराक्रमही से प्राप्त होता है. परन्तु पाठशाला की शिक्षा ऐसी है कि उत्तम रीति से जबतक उसका परिचय न होजायगा तबतक विद्याके अत्यन्त गहन तथा महत्व के विषय कदापि समझ में नहीं आवेंगे. सारांश यह है कि उसीको सब विद्या की नेंव समझना चाहिये. अतएव बालक और बालिकाओं का स्मरण रहे कि, यदि उन्हें विद्या की अभिरुचि है और यदि उन्हें विद्याभ्यास करने की इच्छा है तो वे पाठशाला में अपना २ काम दिल लगाकर उत्तम रीति से करें. दुनियां में व्यवहारिक विद्या का अभ्यास करने में उन्हें बहुत सहायता मिलेगी. ऐसा मत समझो कि लिखना, पढ़ना, हिसाब करना, इतिहास और भूगोल जानना, इतनेही में सब विद्या पूरी होचुकी. विद्या का जो मूल उद्देश है वह इस लेखके शिरोभाग में कवितारूप से दर्शाया गया है. अर्थात् स्वतः सुखी होकर अपने पास के लोगों को किस प्रकार से सुख देना चाहिये, इस बात के जानने में और उसीके अनुसार चलने में, विद्या का मुख्य उपयोग होता है. जब यह उद्देश सफल होजाय तब समझना चाहिये कि विद्या की सार्थकता हुई.

———o———

नारीधर्म.

गृहकार्य में स्त्री का अधिकार.

घर के सब भले बुरे कामों में स्त्री का अधिकार सचमुच बड़ा प्रबल और दुर्निवार होताहै. बिना स्त्री के 'घर' ही नहीं कह सक्ते. कहा भी

है कि "गृहिणी गृह मुच्यते" गृहिणी अर्थात् गृह की स्वामिनी कुल स्त्री को ही गृह कहते हैं. अब यदि इतना बड़ा अधिकार उसे न दिया जाता तो मनुष्य को गृहस्थाश्रम में रहने से क्योंकर सुख प्राप्त होता ?

उत्तम गुणवती स्त्री के मिलने से मनुष्य के मन में एक तरह का विलक्षण धैर्य और सामर्थ्य आजाता है. दुर्भाग्य से यदि मूढ़ स्त्री का संग होजाय तो सदा सर्वदा खटखट, कलह और निराशा बनी रहती है. पुरुष की स्थिति कैसी भी खराब क्यों न हो, उसकी सहधर्मचारिणी पत्नी यदि स्थिर बुद्धि की, दयालु अन्तःकरण की, निश्चयी, और मितव्यय करनेवाली रहे तो, उसको धीरज छोड़ कर हाय खाने का कुछ भी काम नहीं पड़ेगा. जो स्त्री गृहकार्य में दक्ष है वह निरन्तर अपने पतिको सुख देने ही का प्रयत्न करेगी.

दुर्गुणी स्त्री का सहवास बड़ाही दुखदायक होताहै. कोई भी इस त्रास को बहुत दिनतक सह नहीं सकेगा. आदमी का मन कैसा भी दृढ़ होवे, वह पत्थर तो नहींहै ना ! रात दिन क्लेशों के आघात से अवश्यही उसकी हिम्मत छूट जायगी. हां, इसमें कुछ सन्देह नहीं कि उसको बड़े बड़े उद्योग, साहस और पराक्रम के काम करने की खुशी रहती हैं. परन्तु इन सब कामों की सिद्धता करने के लिये उसका मन सदैव शान्त रहना चाहिये. जितने अधिक परिमाण से वह चतुर, बुद्धिवान और शिक्षित होगा, उसी परिमाण से उसको सद्गुणी स्त्री के सुविचार के समागम की अधिक आवश्यकता होगी. क्योंकि उसके थकेहुए त्रस्त मन को पतिव्रता स्त्री के सिवाय दूसरा कौन है जो विश्रान्ति, सुख और समाधान देसके ? क्या यह स्त्री का कम अधिकार है !

प्रत्येक मनुष्य यही चाहता है कि उसे मनोनुकूला स्त्री प्राप्त होवे, जिससे घरमें सदा आनन्द बना रहे. दिन भर नाना प्रकार के श्रम करने के पश्चात् जब रात्रि के समय वह अपने सुख से भरे हुए सदन में पैर रखता है और अपनी मन्दस्मित मधुर भाषिणी प्रिय पत्नी के मुखका अवलोकन करता है तो उसका अन्तरात्मा एकदम आल्हादित होजाता है, उसके शरीर में द्विगुणित बल आकर गृहस्थी के खटपट और व्यवसाय करने के लिए उसका दिल फिर ताजा होजाता है. पर यदि घर में शांति और सुख के बदले नित्य कलह, रोना पीटना, गाली गलौज और चकमक झड़तीही रहे; हमेशा शिकायत, निन्दा और मर्मच्छेदी शब्दों का ही प्रहार होता रहे; सदा सर्वदा रूठना, मुँह मरोड़ना और ईर्षा करना इसीसे गांठ पड़े; तो बेचारा पुरुष हिम्मत हार कर हाय खा जाताहै. उस की छाती फट जाती है! और चारों तरफ से निराशहो कुछ कामका नहीं रहजाता!! सारांश, गृहकार्य में स्त्री का जो अधिकार है वह बहुत ही दृढ़ और अनिवार है.

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसके पढ़ने से यह बात भली भांति विदित होजायगी कि, गृहकार्य में स्त्री को जो कुछ अधिकार मिला है उसका यदि वह अच्छा उपयोग करे तो घर के सब लोगों को सुख होते है; और यदि प्रभुता पाकर मदोन्मत्त होजाय और अपने अधिकार का दुरुपयोग करने लगे तो मनुष्य के गृहस्थी का सर्वस्व नाश होजाता है. इसी लिए स्त्रियों को सन्मार्ग में लगाने के वास्ते और उनके कर्तव्य कर्म उनको समझाने के वास्ते नारीधर्म विषयक कई लेख प्रसिद्ध करने का हमारा विचार है. आशा करते हैं कि इन लेखों के पढ़ने से स्त्रीवर्ग अवश्यमेव लाभ उठावेगा.

नारीधर्म.

१

सा भार्या या गृहे दक्षा, सा भार्या या प्रजावती।
सा भार्या या पतिप्राणा, सा भार्या या पतिव्रता॥

महाभारत—आदिपर्व.

भार्या वही है जो गृह प्रबन्ध में दक्ष होवे; जो लड़के बच्चे वाली होवे; पति ही जिसके प्राण होवें; और जो पतिव्रता रहे.

सब दुःखों का मूल कारण आलस्य है. जो स्त्रियां आलस के वश हो घर का काम काज नहीं करतीं और निरर्थक काम में अपना अमूल्य समय खोती हैं, उनके शरीर में भांति२ के रोग प्रवेश करते हैं. जो स्त्रियां आलस के कारण अपनी विद्या, ज्ञान और बुद्धि सुधारने में परिश्रम नहीं उठातीं, या धर्माचरण करने का प्रयत्न नहीं करतीं उन्हें मानसिक सुख और शान्ति क्योंकर मिल सक्ती है? हे मेरी प्यारी बहिनो! आलस को दूर करो; घर के काम काज करने में, विद्या और कला सीखने में, और अपनी चाल चलन सुधारने में मन लगाओ. विद्या ही के बल से गृहकार्य में तुम्हें निपुणता आयेगी. जिन स्त्रियों को सुशिक्षा नहीं मिली है वे गृहकृत्य में कदापि निपुण नहीं होसक्तीं. और जिन स्त्रियों ने विद्या सम्पादन की है और उसका सदुपयोग नहीं करतीं, उनकी विद्या निष्फल जानिये. परन्तु विद्या तथा ज्ञान प्राप्त करके जो स्त्री गृहप्रबन्ध में मन लगाती है वही सचमुच भार्या कही जासक्ती है.

घर के काम काज करने से शारीरिक व्यायाम होते हैं. शारीरिक नियमों का यथायोग्य पालन करने से सन्तति सुदृढ़ तथा निरोगी होतीहै. प्रकृति के मान से नियमित आहार लेना, शारीरिक परिश्रम करना, स्वच्छ वायु सेवन करना, कामवासनाको अपने स्वाधीन रखकर नियमानुसार रति-सुखोपभोग लेना, इत्यादि अनेक नियम शरीर को स्वास्थ्य और आरोग्य-दायक हैं. जो स्त्री इन नियमों के अनुसार अपना आचरण रखती है, वह स्वयं निरोगी रहकर तेजःपुञ्ज और बलवान प्रजा उत्पन्न करती है. जिस स्त्री की सन्तति उत्तम निरोगी रहे, जो बालसंगोपन करने तथा उनका लालन पालन करने में चतुर होवे, जो अपनी सन्तान को सुशिक्षा देने में आलस न करे, वही सचमुच "भार्या" पद के योग्य है.

जिस स्त्री का सब सुख अपने पतिही के साथहै, जो पति के सिवाय अन्य पुरुष पर प्रेम नहीं रखती, पञ्चप्राण के बिना जैसे यह शरीर जीता नहीं रह सक्ता वैसेही जो स्त्री सिवाय अपने पति के दूसरे किसी से भी सुखी नहीं होसक्ती; और स्वपति जिसको अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रियहै, उसीको "पतिप्राणा" कहतेहैं. जो स्त्री पतिप्राणा हो उसीको भार्या कहना चाहिये.

पति की सेवा करना यही जिस स्त्री का मुख्य व्रत अर्थात् कर्तव्य-कर्म है; क्योंकर अपने पति के शरीर को सुख होगा ! क्योंकर अपने पति का चित्त शान्त रहेगा ! यही विचार रात दिन जिस स्त्री के अन्तःकरण में रहता है और जो अपने पति को आनन्दित करने के निमित्त मनःपूर्वक प्रयत्न करतीहै, उसीको पतिव्रता स्त्री कहतेहैं. जिस स्त्रीका प्रेम अपने पति पर अखण्ड तथा दृढ़ है; यदि पति क्रोधित होजाय तो जो स्त्री उसका खेद

न मान कर फिर भी उसके मन को सन्तोष करनेके लिये बुद्धिपूर्वक उद्योग करती है; पति का स्वभाव कैसा भी खराब क्यों न हो पर जो स्त्री क्षमा तथा विवेक के योग से अपने मन में उसका द्वेष नहीं करती; किन्तु जिस उपाय से अपने पतिके सब दोष दूर होकर उसका आचरण सुधर जाय, इसी सुविचार और नम्रता को धारण करके जो सदैव उसकी सेवा में तत्पर रहती है; किम्बहुना, जो स्त्री एकाग्र चित्त से अपने पति के हितार्थ प्रयत्न करती है और उसके लिये सब प्रकार के दुःख सहने को तत्पर रहती है, वही स्त्री पतिव्रता कहलाती है.

कई स्त्रियां अपने मन में ऐसा भी कहती हैं कि, पति के लिये हम इतने क्लेश क्यों सहें ? उससे क्या लाभ होगा ? तो अब, हे मेरी प्यारी बहिनो ! तुम इस बात को भली भांति ध्यान में रक्खो कि, तुम्हें पति के सिवाय दूसरी गतिही नहीं है. तुम्हारे इह लोक और परलोक का सुख सर्वथैव उसी पर निर्भर है. क्या तुम यह नहीं जानतीं, पूर्वकाल के लोगों को पारलौकिक सुख प्राप्त करनेके लिये कैसी कठिन तपश्चर्या करनी पड़ती थी ! जो स्त्री पतिसेवा में अपने प्राणतक अर्पण करती थी वही महान् साध्वी और तापसी कहलाती थी. उसके तप का फल इतना बृहत् होता था कि उसकी गणना भी नहीं कर सक्के. किसी को सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य मिलने से जितना लाभ होगा, उसकी अपेक्षा शतपट अधिक लाभ पतिसेवा में अपनी आयु व्यतीत करने से साध्वी स्त्री को होता है. परन्तु साध्वी स्त्री इस फल या लाभ की इच्छा नहीं रखती. निरपेक्षबुद्धि से पति की सेवा करने में ही वह अपने जन्म का उद्दिष्ट हेतु समझती है.

प्रिय वाचकवृन्द ! तुमने सुनाहै कि कई पतिव्रताओं ने अपने व्यसनासक्त, घर द्वार छोड़कर परदेश में प्रवास करनेवाले, पति को नाना-

प्रकार के सङ्कटों से मुक्त किया. उनका साहस और पर्वत तुल्य दुःख सहने का ढाढस देखकर, कई शूर और पराक्रमी पुरुष भी आश्चर्यचकित होगये. इन्हीं परम पूज्य और वन्दनीय पतिव्रताओं ने बड़े २ बलवान राजा महाराजाओं का गर्व हरण किया है. लङ्कापति रावण ने त्रिभुवनको जीत लिया; अग्नि, वायु, इन्द्र इत्यादि देवताओंको अपने स्वाधीन किया; परन्तु अकेली स्त्री सती सीता को जीत न सका. अहाहा ! साध्वी स्त्री का पराक्रम ऐसाही है !! उसका धर्म बल अजेय है !!! देखो दमयन्ती कैसे सङ्कट में पड़ी थी. राजा नल ने उसको अर्धवस्त्र के सहित भयङ्कर अरण्य में छोड़ दिया. तौ भी अपने पतिकी भक्ति उसके मनसे यत्किंचित् भी कम न हुई. व्याघ्र गजादि हिंसक बनचरों के मुखसे बच कर, विषयान्ध दुर्जनों की कामवासना से अपने अचल पातिव्रत धर्म का रक्षण करके, बड़ी चतुरता से सब सङ्कटों में से पार हुई, और फिर भी अपने पति की सेवा करने लगी. धन्य है ऐसी साध्वी स्त्रियों को ! जिनके जन्ममात्र से भारतभूमि पवित्र होगई !! सती की सत्यनिष्ठा कौन भङ्ग कर सक्ता है ? केवल पातिव्रत धर्म का रक्षण करके स्त्रियों ने अपना अधिकार इतना बढ़ा लिया है कि, उनके शक्ति की कुछ कल्पना नहीं की जासक्ती. इसी लिये जो स्त्री पतिव्रता है उसीको सचमुच भार्या समझना चाहिये.